हम हंसें जग रोये !

पण्डित श्री वचनेश त्रिपाठी

'कबिरा' जब हम पैदा भये, जग हंसा हम रोये।
अब ऐसी करनी कर चलो, हम हंसें जग रोये।।

संत कबीर दास का यह कलाम है कि, ''जब हमने दुनिया में जन्म लिया उस समय हम एक बच्चे के रूप में रूदन कर रहे थे और दुनिया हम पर हंस रही थी। लेकिन अब होश संभाल लेने पर हम कुछ ऐसी ज़िन्दगी जियें, अपना जीवन कुछ इस तरह ढालें कि जब हम संसार छोड़ रहे हों तो हमारे होंठों पर हंसी हो लेकिन हमारे ग़म में दुनिया के तमाम लोग रो रहे हों।

किसी सत्कर्मी, सद्धर्मी और सत्य के पुजारी पुण्य आत्मा पुरूष के महा प्रयाण पर ही कबीर दास की यह वाणी चरितार्थ हो सकती है न कि रावण, कंस या किसी अन्य ज़ालिम के दुनिया छोड़ने पर।

संसार के महान शहीदों में हज़रत इमाम हुसैन (अ०) एक ऐसे ही महान बलिदानी थे जिनकी कुर्बानी पर आज भी दुनिया के लाखों-करोड़ों इंसाने रोते हैं, शोक विह्ल हो उठते हैं। इतिहास साक्षी है कि इमाम हुसैन (अ०) ने कभी मौत की मुतलक परवाह न की । वस्तुतः यज़ीद को नकारना प्रत्यक्ष मृत्यु को बुलावा देना था। परन्तु उन्होंने न अपने जीवन के लिए सोचा न अपने कुन्बे के लिए-वरन् उन्होंने शुरूअ् में ही एक ग़लत और ग़लीज़ आदमी की ग़ुलामी करने से साफ़ इन्कार कर दिया। दृढ़ संकल्प कर लिया कि यह सर यज़ीद के सामने किसी भी क़ीमत पर नहीं झुक सकता। यज़ीद क्रूर दमन कर्त्ता था। वह दमन चक्र चलाता रहा। न सिर्फ़ मदीना बल्कि कअ्बे और करबला तक इमाम हुसैन (अ०) का पीछा न छोड़ा। लेकिन इमाम हुसैन (अ०) थे कि अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहे, कभी एक क्षण के लिए भी विचलित न हुए। उस वक़्त् भी जब कि कई रोज़ का प्यासा उनका छः महीने का बेटा अली असग़र, तीरों से बिंध कर, लहू लहान होकर, उन्हीं की गोद में दम तोड़ गया।

कैसा मुसलमान था यज़ीद कि जिसके आदेश से एक-एक बूंद पानी के लिए बच्चों को तड़पाया गया और फिर क़त्ल करा दिया गया।

वक़्ते ज़िब्हा जानवर को देते हैं पानी पिला।
हज़रते इंसान को पानी पिलाना है मनअ् ।।

कैसा था वह **''ख़लीफ़ा''** जिसने इमाम हुसैन (अ०) के अहले-हरम को मैदान-ए-करबला से क़ैद कर मंगाया? कैसा था वह दीनदार कि जिस की फ़ौजों ने मक्का -मदीना और कअ्बा को तबाह व बरबाद कर डाला! और जिसने (यज़ीद ने) खुद अपने हाथों से इमाम हुसैन (अ०) के कटे मस्तक को अपमानित करने के लिए उस पर बेत से प्रहार किया।

''हमारी ख़ाक भी बादे फ़ना बरबाद करते हैं''

वह चज़ीद जो न सिर्फ़ शराब ख़ोरी करता था बल्कि ज़िनाकारी जैसे गुनाहों के सैलाब में गले-गले ग़र्क था, जो सरे आम विद्वानों का अपमान करता था। उस यज़ीद को इमाम हुसैन (अ०) जैसा धर्मत्मा कैसे स्वीकार कर लेता ? यज़ीद ने यह सब कुकर्म किये महज़ सत्ता के लिए, हुकूमत के लिए। अगर हुसैन (अ०) को हुकूमत दरकार होती तो क्या वह भी अपना संगठन या अपनी सेना इस के लिए नहीं खड़ी कर सकते थे ? लेकिन वह सत्ता लोलुप न थे, साधु पुरूष थे। वह अध्यात्म के साधक थे। सत्ता की, शासन की उन्हें चाह न थी। साथ ही वह किसी पापिष्ठ का नेतृत्व भी स्वीकार नहीं कर सकते थे। अबलत्ता वह शेष जीवन, शांति के साथ भारत में बिता देना कहीं श्रेयस्कर समझते थे। यदि यज़ीद उन का पथावरोध न करता तो ज़रूर वह भारत की सर ज़मीन पर रौनक़ अफ़रोज़ होते और उन की सत्संगत पाके यहां के सज्जन और सच्चाई परस्त लोग प्रसन्न होते।

अध्ययन से पता चलता है कि हज़रत इमाम हुसैन (अ०) दिल आज़ारी (पर-पीड़न) को अधर्म मानते थे। वह पर-दुख कातर थे, दुखियों के हमदर्द थे। जब कि यज़ीद ख़ुदग़र्ज़ी से प्रेरित होकर लम्हा दर लम्हा दिल आज़ारी का मश्शाक़ था और ज़ोर जुल्म का बर्ताव उस के स्वभाव-संस्कृति में रच बस गया था। मैं नहीं मानता कि दीन-ए-इस्लाम दिल आज़ारी का समर्थक है। मैं अल्लामा ''इक़बाल'' **के चिन्तन और कथन से बहुत**

सी जगहों पर सहमत नहीं हूँ परन्तु यहाँ पर उन्होंने बहुत ठीक कहा है।

नक़्श तौहीद का हर दिल पे बिठाया हम ने।
ज़ेरे ख़न्जर भी यह पैग़ाम सुनाया हम ने ।।

क्यों कि यह पैग़ाम (संदेश) खंजर के नीचे लेट के इमाम हुसैन (अ०) ने करबला में सुनाया था। आप सज्दे में थे और क़ातिल की छुरी गर्दन पर थी और आप पंथ (उम्मत) की भलाई के लिए ख़ुदा से प्रार्थना कर रहे थे।

शहीद देश, काल या धर्म की सीमाओं से न बंधे होते हैं और न बंटे। वरन् वे सम्पूर्ण संसार और सकल मानवता के होते हैं। अखिल जगत के लोग सुक़रात, मंसूर, जायसी, कबीर, आज़ाद, भगत सिंहद्व खुदी राम और आक़ा सूफ़ी (अंबा प्रसाद) जैसे महा प्राण उनकी शहादत से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। यही वजह है कि भारत के घोर पराधीनता के काल में, जब यहां विदेशी अंग्रेज़ तप रहे थे और यज़ीद की तरह दमन चक्र चला रहे थे तो उस जलजलाते ज़माने में मुंशी प्रेम चंद्र ने उर्दू में करबला नाटक लिखकर वतन के नौ जवानों को देश के लिए अपनी ज़िन्दगी कुर्बानी करने की नसीहत की। मैं पहले पहल वही पुस्तक पढ़ कर इमाम हुसैन (अ०) की बलिदान कथा से परिचित हुआ और उसे पढ़ते-पढ़ते कई बार रो दिया। उस वक़्त सहसा ये पंक्तियाँ सामने आकर जैसे बोल उठीं कि-

''असग़र'' हरीमे इश्क़ में हस्ती ही ज़ुर्म है।
रखना कभी न पाँव यहां सर लिए हुए ।।

नई खोज के दरमियान मैने कई लेखकों के लेखों में यह भी पढ़ा कि जब यज़ीद ने ''हुसैन इमाम (अ०)'' की घेरा बन्दी की तो उस वक़्त कोई हिन्दू क़बीला भी इमाम हुसैन (अ०) के पक्ष में यज़ीद की फ़ौजों से लड़ा। यदि फ़ारसी ग्रन्थों से भी यह तथ्य प्रमाणित हो सके तो यह प्रसंग क़ाबिले ग़ौर है। मैं इस लेख में तो नहीं किसी दूसरे मौक़े पर खोज कर के इन बातों को लेख बद्ध कर सकता हूँ।

याद करता हूँ कि मैदाने करबला में इमाम हुसैन (अ०) का कुन्बा तीन रोज़ तक प्यासा रहा लेकिन यज़ीद की ताकीद के मुताबिक़ उन्हें छोटे-छोटे मअ़सूम बच्चों के लिए भी दरिया-ए-फ़ुरात से पानी न लेने दिया गया इसके ख़िलाफ़ एक वाक़िआ दरपेश हुवा था राजस्थान में, कि वहां जिस वक़्त अकबर की फ़ौज और राणा प्रताप में जंग हुयी और उस में मुग़ल फ़ौज का सिपहसालार जो अकबर का रिश्तेदार भी था-सेरिमां सुल्तान, राणा के बेटे की बर्छी से ज़ख़्मी होकर दम तोड़ रहा था। तो उसने अपने एक ज़ख़्मी सैनिक के ज़रिअ़े राणा को कहलाया कि, इस जलते रेगिस्तान में क्या मुझे पानी न मयस्सर होगा? तो राणा प्रताप ख़ुद गंगा जल भरा गड़वा लेकर सेरिमां सुल्तान तक पहुंचे थे और अपने हाथों से उन्हें जल पिला के कहा था, ''मेरे लायक़ और कोई सेवा हो तो बेहिचक कहिए''। सुल्तान ने उनके बेटे अमर सिंह को एक बार देखने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। राणा ने अमर सिंह को उनके रूबरू पेश कर दिया। यह वही अमर सिंह था जिसके बार से, सेरिमां सुल्तान जिन्हें जहांगीर 'चचा मियाँ' कहता था, घातक रूप से घायल हुए थे और फिर कभी उठ नहीं सके।

एक और मिसाल-यज़ीद ने इमाम हुसैन (अ०) के, जो कि पैग़म्बर मोहम्मद (स०) के नाती थे, करबला में शहीद हो जाने पर, अहले-हरम को क़ैद कर लिया और उन्हें ऊंटों पर सफ़र करने के लिए मज्बूर किया। इसके बरख़िलाफ़ एक उदाहरण नये सिरे से उसी राजस्थान की रेत में उभरता है-जब राणा प्रताप के बेटे अमर सिंह ने अकबर के ख़ान ख़ाना यअ़नी सिपहसालार का हरम क़ैद कर लिया तो राणा प्रताप ने इसके लिए न सिर्फ़ अमर सिंह की लअ़नत मलामत की बल्कि उन सभी मुस्लिम स्त्रियों को बाइज़्ज़त अपने सैनिकों के पहरे में रहीम ख़ान ख़ाना के पास सुरक्षित वापस भिजवा दिया। तौहीद की बुनियाद ऐसे बर्ताव से पुख़्ता होती है न कि यज़ीद के काले कारनामे से कूफ़े में यज़ीद के भेज हुए प्रशासक इब्ने ज़ियाद ने फ़रेब का सहारा लेकर इमाम हुसैन (अ०) का लिबास पहना था ताकि वह धोखा देही में कामयाब हो सके। यह प्रसंग उस छल-प्रपंच की याद दिलाता है जब रावण ने सीता जी को पंचवटी से उठा ले जाने के लिए एक साधु का वेष धारण किया था और सीता जी से भिक्षा मांगने पहुँचा था मुल्क व मिल्लत भले ही जुदा-जुदा हो लेकिन दिखाई यह देता है कि रावण हर युग में आते हैं और उनके ख़ूनी इरादे हंसती-खेलती दुनिया की आबादी को ख़ून और आसुओं के सैलाब में डुबो देते हैं। कोई मर्द-ए-मोमिन इन रावणों को यज़ीदों और इब्न-ए-ज़ियादों को कैसे अपना रहनुमा मान सकता है ? कैसे उन्हें सलाम

बजा ला सकता है ?

ऐसे ही ज्वलंत **उदाहरण मुस्लिम बिन अकील और हानी बिन उरवा के हैं जिन्होंने तमाम ज़िल्लतों और ज़ुल्म व सितम को सहते हुए भी सत् का पथ न छोड़ा और न इमाम हुसैन (अ०) का साथ छोड़ा।** एक दिन इब्न-ए-ज़ियाद के प्रहार से हानी बिन उरवा का मस्तक फट गया लेकिन उन्होंने मुस्लिम बिन अक़ील को इब्न-ए-ज़ियाद के हवाले नहीं किया।

यह वाक़िआत साक्षी हैं कि मर्द-ए-मोमिन मौत से नहीं डरते बल्कि उन का अक़ीदा पूरे ऊंचे स्वर से मुखर हो उठता है कि-

रहरवे राहे मोहब्बत, रह न जाना राह में।
अब तेरी हिम्मत का चर्चा, ग़ैर की महफ़िल में है।।

शहादत सब को नसीब नहीं हुवा करती। मेरे एक दोस्त थे, उन्हें हुबे वतन के जुर्म में अंग्रज़ों ने आजन्म काले पानी की सज़ा दी, जब कि उनके कई साथियों को फांसी की सज़ा दी गयी। तो वह मेरे मित्र बेसाख़्ता अदालत में कह उठेः-

मैं दार का तालिब था, तक़्दीर में ज़िन्दाँ है।
कैसे मुझे मिल जाता, जो हक़्क़े शहीदाँ हैं।।

यअ़नी मैं फांसी का तलबगार था पर तक़्दीर में लिखी थी उम्र क़ैद-फ़िर मुझे एक शहीद का हक़ कैसे मिल सकता था। उन्हें तमन्ना रही कि उन्हें भी फांसी क्यों न मिली।वही ओहदा, वही हक़्-ए- शहीदां वही रूत्बा जो इमाम हुसैन (अ०) और उनके मअ़सूम बच्चों और सहकर्मी साथियों को मयस्सर हुवा। ऐसा इतिहास क्या कभी भुलाया जा सकता है ?जो दिल आज़ारी और ख़ुंरेज़ी करे वह न हिन्दू है न मुस्लिम बल्कि उस की बिरादरी रावण, कंस, यज़ीद और इब्ने ज़ियाद की है।

रावण तो ब्राह्मण था महान ऋषि पुलस्त्य का नाती था। उसके पिता विश्रवा मुनि भी भी बड़े भारी विद्वान थे। रावण भी कम विद्वान न था लेकिन उसके आमाल कैसे थे ? किस क़द्र ख़ूरेज़ी पर आमादा था कि पहले अपने भाई का हक़ छीन लिया-उसी चचेरे भाई कुबेर की थी लंका लेकिन रावण ने पशुबल आज़माकर उस भाई को भगा दिया और खुद शासक बन बैठा फिर अपने बहनोई को क़त्ल कर डाला। आये दिन वह लोगों को सताने लगा, दिल आज़ारी करने लगा। ख़ून करना उसकी आदत बन गयी। राम उसे कैसे तस्लीम कर सकते थे ! वह छोटे-छोटे नाचीज़-ग़रीब तबक़े के लोगों को गले लगा सकते थे जैसा कि शबरी भीलनी, गीध, निषाद (केवट) को गले लगाया। लेकिन सत्ता और शक्ति के मद में उन्मत रावण को सिर नहीं झुका सकते थे। यही उनकी महिमा-गरिमा थी। भले उन्हें जंगल दर जंगल, पहाड़ दर पहाड़ भटकते हुए तमाम मुसीबतें झेलनी पड़ी। यही दृढ़ता इमाम हुसैन (अ०) और उनके साथियों में चरितार्थ मिलती है। वह ख़ुद को मिटा गये। अपना पूरा कुन्बा न्योछावर कर दिया। लेकिन सच्चाई और नेकी की राह रूद्ध नहीं होने दी। कितने ही यज़ीद और इब्न-ए-ज़ियाद आये और चले गये। उनके नाम मिट गये। लेकिन वह पुर नूर रास्ता आज भी रोशन है। सत्य का चिराग़ अखण्ड जल रहा है क्योंकि-

"वह शम्अ़ क्या बुझे जिसे रौशन ख़ुदा करे।"

पेज नं0 38 का बाक़िया..........

यह वह करबला की घटना है जिसे मुसलमान हर देष में मुहर्रम के अवसर पर याद करके आंसुओं की भेंट अर्पित करता है। तेरह सौ बरस बाद भी मुसलमानों के दिलों मे इस घटना की याद वैसी ही मौजूद है। कोई मुसलमान ऐसा नही कि जिसके दिल में इस घटना कि याद से एक ओर दुख और दूसरी ओर हौसला न पैदा होता हो परन्तु जैसा कि मैने अभी कहा इस घटना का महत्व सिर्फ मुसलमानों के लिए ही नहीं हैं बल्कि तमाम संसार के इन्सानों के लिए है। इस कारण यह आवश्यक था कि इस कुरबानी के महत्व का एहसास हर धर्म के लोगों में पैदा किया जाये यह बात धन्य है कि अन्जुमने यादगारे हुसैनी के प्रयत्न से आज यह सम्भव हुआ कि मुसलमानों के साथ हिन्दू, ईसाई और दूसरे धर्मो के लोग भी मिल कर इमाम हुसैन की शान में वह श्रद्धान्जली पेश कर रहे हैं जिसके वह हर तरह से हकदार हैं। खुदा करे यह श्रद्धान्जली जीवन के हर क्षण में एकता बनाये रखे और आपस के उस भेद भाव को मिटा दे जिसके कारण हिन्दुस्तान अब तक दुनिया की कौमों में वह स्थान प्राप्त नही कर सका जिस का वह हर तरह हक़दार है।